पुनर्जन्म

रविंद्र आरोही

पुनर्जन्म

एक लेखक था। वह एक सुदूर इलाके के अपने एकांत में रहता था। आस-पास के लोग उसे एक लेखक नहीं, एक सुंदर आदमी की तरह जानते थे। छोटे कद काठी का गेहुँआ रंग था उसका। छोटी-छोटी आँखें थीं। पतले होंठ थे। वह ऐसा था कि उसे आसानी से भुलाया भी जा सकता था। वह जब बच्चा था तो कई बार हुआ कि स्कूल की छुट्टी हो

जाने पर वह कक्षा में छूटा रह जाता था। बहुत देर बाद खोज-बिन कर उसे घर पहुँचा दिया जाता। माँ-बाप के साथ मेला देखने में उसका एक-आध बार खोना तो तय ही था। ऐसा नहीं था कि उसके कहीं छूट जाने या खो जाने में किसी की लापरवाही होती थी, बस बात इतनी-सी थी कि उसका नहीं होना भी होने जितना ही सहज लगता था। पेड़ के नीचे बैठा हुआ या नदी के किनारे बैठा हुआ भी वह कहीं खोया हुआ-सा ही लगता था। बचपन की सारी स्मृतियाँ, घटनाएँ उसकी आँखों में रोमांच और उदासी के मिश्रण की तरह उतर आए थे। उसकी आँखें उत्सुक लगतीं। वह किसी भी चीज को बड़ा विस्फारित होकर देखता और देखते-देखते उदास हो जाता। उसके होंठ खुले रह जाते थे।

वर्षों से उसके घर में कोई था नहीं। वह अकेले रहता था इसलिए उसके घर कोई अनुष्ठान नहीं होता था। कोई उत्सव नहीं। इसलिए वह किसी को अपने घर बुलाता नहीं था पर किसी के घर जाना भी उसे अच्छा नहीं लगता था। पता नहीं कब से वह यहाँ कभी के छूटे हुए की तरह से रह रहा था। शुरू-शुरू में उसकी ये आदत तो सबको बड़ी नागवार गुजरती थी। लोग उसे मतलबी और घमंडी समझते थे। वह जानता भी था कि लोग उसे ऐसा समझते हैं। पर वह ऐसा ही था। बाद में लोग समझने लगे कि आदमी बढ़िया है, बस उसे किसी से मिलना जुलना पसंद नहीं। चूँकि मुहल्ले में सभी जाति-धर्म के लोग रहते थे तो लेखक किसी भी त्योहार के दिन ठीक-ठाक कपड़े पहनकर अपने दरवाजे पर बैठा रहता। ऐसा करना भी उसे खूब ठीक नहीं लगता था। पर यही बचपन की एक आदत थी जो उसके पास रही आई थी। बचपन में इस बात के लिए उसकी माँ उसे बहुत डाँटती और अच्छे कपड़े-लत्ते पहनाकर बच्चों के बीच खेलने भेज देती या तीज-त्योहारों में नए कपड़े पहना देती। धीरे-धीरे ये मजबूरी उसकी आदत हो गई थी। अब वह स्वतः ऐसा करता कि त्योहार वाले दिन नए कपड़े में दरवाजे पर कुरसी लगाकर बैठता और आने-जाने वालों से मिलता जुलता रहता पर जाता कहीं नहीं था।

अब लोग-बाग उसका खयाल रखने लगे और सोचते कि एक न एक दिन उनके आदर-सत्कार से यह आदमी बदलेगा जरूर। लोग उसे किसी मौके पर बुलाते नहीं। आस-पास शोर-शराबा भी नहीं करते। बस हाल चाल के बीच बता भर देते थे कि जैसे

- अरे, क्या बताऊँ बड़ी व्यस्तता है, चैत में उन्नीस तारीख को लड़के का छेका है। सब इंतजाम करना है। यही सब। और वह हाँ हूँ कह कर चुप लगा जाता। फिर भी मोहल्ले में कुछ होता मसलन किसी के यहाँ कोई शादी व्याह तो वह शाम को अच्छे कपड़े पहनकर, टहलने की तरह एक चक्कर मुहल्ले का लगा आता। लोग-बाग समझ जाते कि वह समारोह में शरीक हो गया और लोग खुश हो जाते। नहीं तो ऐसे उसकी दिनचर्या बड़ी सहज थी। सुबह के अँधेरे के साथ उठता। शौच से निवृत्त होकर अपने लिखने-पढ़ने की कुरसी पर बैठ जाता। उसकी मेज के सामने एक खिड़की थी जो आकाश में खुलती थी और दूसरी खिड़की बाईं हाथ के पास थी जो बच्चों के खेलने के मैदान में खुलती थी। वह दोनों खिड़कियाँ खोल देता और एकटक मैदान की ओर ताकने लगता।

बिना लालटेन जलाए वह चुपचाप बैठा रहता। धीरे-धीरे मैदान साफ होने लगता। पेड़ दिखाई देने लगते। चिड़ियों की शोर उठने लगती। लोग बाग की चहलकदमी बढ़ने लगती और इन सबके बीच पता नहीं कब और कैसे फाँड़ भर अँजोर चुपके से आकर उसकी मेज पर बैठ जाता और पता नहीं कब से अपनी पुरानी फ्लोरा पेन के साथ मशक्कत करता लेखक अपनी डायरी पर झुका होता। और वह तब तक उसी तरह झुका रहता जब तक कि चिड़ियाँ चुपा न जातीं। और एक तीखी धूप उसकी कनपटियों को जलाने न लगती। वह बैठे-बैठे ही खिड़कियों के चटाईनुमा परदे को गिरा देता। अब उस तक सिर्फ हल्की हवा और रोशनी पहुँचती। धूप वहीं छन जाती। यह दूध वाले का समय होता। वह उठता और पतीली लेकर दरवाजे पर खड़ा हो जाता। फिर चाय बनाता और दो बिस्कुट के साथ चाय पीकर कुरसी पर बैठ जाता। लगभग ग्यारह बारह के बीच वह उठता। और दो-ढाई घंटे में नहा धोकर झोलवाली मछली और उसिना चावल का भात खाकर दरवाजे के सामने आराम कुरसी पर एक किताब लेकर बैठ जाता और बैठते न बैठते मिनट दस एक बाद ऊँघने लगता। वह बेंत की एक आराम कुरसी थी। बड़ी-सी। उसपर एक मरून रंग का एक बड़ा सा टावल था, जिसका रंग अब मुरझाए पलास सा हो गया था। दरवाजे पर कृष्णचुड़ा और राधाचुड़ा के दो जवान गाछ थे।

लेखक के बैठने का वह तिजहरिया का समय होता था जब धूप खिड़की की ऊपरी साँकल तक पहुँच गई होती थी। कुरसी पर थोड़े टूटे पत्ते, थोड़ी छाँह और टावल पर पीठ सेंकने जितनी धूप की गरमाहट लगी रहती थी। वह बैठते न बैठते नींद की झोंक में आ जाता। कई बार हाथ की किताब छूटकर नीचे गिर जाती। चश्मा सरककर नाक के नीचे बह जाता। तब वह हड़बड़ाहट में जगता और किताब उठा लेता। उसे तब थोड़ी सी झेंप आती और वह अगल-बगल देख लेता।

यह रोज-रोज का था। आकाश का रंग जब झाँवर हो जाता और धूप की गरमाहट महज पेड़ों की फुनगियों पर बची रह जाती तब वह एक प्याली चाय लाकर फिर उसी कुरसी पर बैठ जाता और तब इत्मिनान से चाय पीते हुए किताब के एक-एक हर्फ को सम्मोहन की तरह पढ़ता। यह बेहद स्फूर्ति वाला समय होता था। और फिर... किताब के हरुफ पर शाम उसी तरह गिरती जैसे लिखने की डायरी पर आकाश वाली खिड़की से सुबह की धूप गिरती थी। और आज कमाल तो ये हुआ कि वह चाय की खाली कप हाथ में उठा कर जैसे ही उठने को हुआ कि राधाचुड़ा की एक पत्ती नाचती हुई गिरी और उसी कप में आ पड़ी। लेखक का चेहरा विस्मय से खिल उठा। युगों बाद उसने ऐसे लय का अनुभव किया था। वह घर के भीतर आ गया। बाहर के दरवाजे भीतर से बंद कर लिए। कप और किताब को एक टेबल पर रखकर वह कमरे के बीचोंबीच खड़ा हो गया। उसने एक हाथ सिर पर रखा और दूसरे हाथ कमर पर। उसने नाचने की कोशिश की। अपनी जिंदगी में उसने कभी नाचा नहीं था। उससे नाचने के लिए कभी किसी ने कहा भी नहीं था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि उसने ऐसा कभी नहीं किया था। एक पत्ती के मरणासन्न में भी इतना लय है। सारे लोग नाचते हैं। जानवर भी नाच लेते हैं। बच्चे नाचते हैं। औरतें नाचतीं हैं। ऐसा क्या है कि उसने कभी नहीं किया। और उसे पूरी जिंदगी में किसी ने क्यों नहीं कहा। उसे वे सारे रिश्ते याद आए जो उसे एक बार नाचने के लिए तो कह ही सकते थे। जीवन में सबको किसी न किसी ने एक बार तो कहा ही होगा। क्या वह जीवन भर इतना रूखा था कि उसे कभी किसी ने नहीं कहा! बाहर से देखने पर उसके हाथ पैरों में कोई लय नहीं थी पर एक छंद था जो उसके अंदर प्रस्फुटित हो रहा था। वह नाच रहा थ। वह थक रहा था पर वैसे नहीं जैसे कोई भारी सामान ठोते हुए थकता है वैसे थक रहा था जैसे कोई तैरते हुए थकता है। कोई रोते हुए थकता है। वह थक कर बिस्तर पर गिर गया। वैसे ही पड़ा रहा। धमनियों में रक्त को

जैसे नया प्रवाह मिला था कि इस तरह कभी बहे ही न हों। साँसें जैसे तनी जा रही थीं। शरीर से उखड़ रही थीं। वह पड़ा रहा निश्चेष्ट। निर्वेद। वहाँ अँधेरा का रूपक काला नहीं साँवला था। दुख नहीं हँसी थी। गाछ नहीं, स्त्री थी। स्त्री माँ नहीं, स्त्री थी। स्त्री स्मृति नहीं घूमर थी। और घूमर एक नाच था महज।

धमनियों में बहते रक्त शांत हो गए। साँसें सम हो गईं। उसे आश्चर्य हुआ कि इस कमरे से बाहर के दरवाजे की कुरसी तक और बाहर के दरवाजे की कुरसी से कमरे तक आते जाते वह बूढ़ा कैसे हो सकता है भला। उसे यह सब मजाक लगा। उसने अँधेरे में मुस्कुरा दिया। फिर न जाने कितने किस्म के फूलों की गंध से उसका कमरा भर गया। यह गंध मैदान की ओर खुलने वाली खिड़की से आ रही थी। कमरे की हवा बोझिल हो गई।

सुबह हुई। कमरे में नीरा बयार की गंध थी। रात वाली खुशबू की कहीं बात तक न थी। और उस बिस्तर पर राधाचुड़ा की सूखी हुई, ऐंठी हुई पत्ती पड़ी थी महज।

...हा हा हा

अरे! वो वाली बात नहीं थी जो तुमने सोच ली। तब लेखक दरअसल रसोई में चाय खौला रहा था और उसकी हड्डियों के खोखल में मज्जे की जगह सीसे का चूर भर गया हो जैसे, पोर पोर पिरा रहा था।

इस उम्र तक आते-आते अब वह बाहर ज्यादा बैठता था। लिखने में हाथ काँपते थे। नजरों का घेरा कम हो गया था। अब वह बेंत की आरामकुरसी पर बैठा पढ़ता ही ज्यादा था और पढ़ने से ज्यादा देखता था। उसने दस-एक उन्यास लिखे थे। कविता कहनियों की दर्जन भर किताबें लिखी थी पर बड़ी बात कि वह अब भी किसी से मिलता जुलता नहीं था, सिवाय अपने डाकिया के। डाकिये के आने पर वह उसे पानी पिलाता। बतासे खिलाता और दस-पाँच रुपए देकर उसे विदा करता। वह सभा संगोष्ठियों में नहीं जाता था। उसे कई पुरस्कार मिले पर वह लेने नहीं गया। बस एक पोस्टकार्ड लिख देता कि आपका आदर मैं स्वीकार करता हूँ। कुछ असमर्थता है कि मैं

आपकी भेंट लेने आ नहीं सकता और मैं चाहता हूँ कि आप सब भी मुझे पुरस्कृत करने न आएँ। संभव हो तो डाक से भेज दें। मुझे खुशी होगी। आपका लेखक...।

इस तरह उसे कई पुरस्कार मिले, कविता, कहानी, उपन्यासों की चर्चाएँ हुईं पर लेखक निर्वेद रहा। और यह सब होते-होते वह उम्र के एक किनारे पर पहुँच गया था, जहाँ दृश्य सिमटने लगे थे और हाथ काँपने लगे थे। तभी के पतझड़ वाली एक सुबह में लेखक अपने दरवाजे से टेक लेकर कुरसी पर बैठा धूप सेंक रहा था कि डाकिया एक पोस्टकार्ड दे गया। लेखक पोस्टकार्ड हाथ में लेकर अंदर गया और चश्मा लेकर आया और फिर दरवाजे पर बैठ गया। वह पोस्टकार्ड एक महिला पाठक का था जिसने एक कहानी के लिए लेखक को बधाई भेजी थी। भेजने वाले ने लिखा था, "आपकी कहानी 'पुनर्जन्म' मैंने पढ़ी। क्षमा करें मैं आपकी इस कहानी की बहुत लेटलतीफ पाठक हूँ। यह कहानी मुझे बहुत प्यारी लगी। आप बधाई स्वीकारें।"

लेखक ने उस पत्र को कई बार पढ़ा और उस कहानी को याद करना चाहा। वह कहानी उसने लगभग चालीस-बयालीस साल पहले लिखी थी। किसी ग्रामांचल के किसी छोटी-सी पत्रिका में छपी थी। तब लेखक के पास बस संपादक का एक पोस्टकार्ड आया था कि वो उस कहानी को छाप रहा है। लेखक को छपी प्रति भी नहीं मिली और आश्चर्य कि उस कहानी से संदर्भित किसी पाठक का पत्र भी नहीं मिला। उसे पता ही नहीं चला कि कहानी छपी भी या नहीं। कुछ महीने तक तो लेखक को ये बात याद रही पर बाद के दिनों में वो उस पत्रिका का नाम भी भूल गया। उसके पास कहानी की मूल प्रति भी नहीं थी। वह कहानी कुछ दिन उसके दिमाग में रही फिर वह उसे भूल ही गया। वह कहानी उसके किसी संग्रह में भी नहीं थी।

उसने उस पत्र को कई बार पढ़ा और एक दोपहर डाकिए से पोस्टकार्ड माँगकर काँपते अक्षरों में उत्तर लिखा, "बहुत-बहुत धन्यवाद। मेरी उस कहानी को करोड़ों प्रकाश वर्ष और अनगिनत कल्प की यात्राएँ तय करनी हैं और उस यात्रा में आप पाँच सौ वर्ष बाद भी उस कहानी को पढ़तीं तो भी बहुत जल्दीबाजी होती। - आपका लेखक"

लेखक ने उससे वो कहानी नहीं माँगी। पत्र में उस शीर्षक को पढ़कर उसे कहानी की कुछ-कुछ याद आई पर कहानी याद नहीं आई। अब उसकी उत्कट इच्छा हुई कि वो

मरने के बाद फिर जन्म ले तो अपनी उस कहानी को पढ़े, देखे। अब वह अपनी कहानी को खूब याद करने लगा और दुबारा जन्म लेने के लिए अपने मरने की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करने लगा। चूँकि अब वह लिख-पढ़ नही पा रहा था तो सिर्फ सोचता था। और आश्चर्य ये कि अब उसे सिर्फ वे ही कहानियाँ-कविताएँ याद आतीं जो उसकी स्मृति की खोह में कहीं खो गई थीं, जिन्हें वह कभी लिखना भूल गया था। अब उसके पास दूसरे जन्म के लिए कई कहानियाँ थी। अब उसके पास मरने के लिए कई गुना उत्साह था।

अब वह रोज सुबह-सुबह उठकर कई गुना उत्साह से टहलने जाता। सबसे मिलकर भर मतलब बतियाता, हँसता और लौटते घड़ी पड़ोसियों के घर दो-तीन प्याली चाय पीकर ही लौटता था।